भारत में बचपन का अध्ययन*

कृष्ण कुमार

इस लेख में हम बचपन विषय पर ऐसे अनेक विचारों पर एक नजर डालेंगे जो पिछली सदी के भारत में प्रबल रहे हैं। साथ ही नई सदी में बच्चों की परवरिश, शिक्षाशास्त्र और राजनीति के लिए उन विचारों के क्या अर्थ हैं, इस पर भी विचार करेंगे।

बचपन शब्द या अवधारणा को विश्लेषण के एक साधन के तौर पर इस्तेमाल करने की हमारी क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि हम पालन-पोषण, शिक्षण, बाल-साहित्य और स्वयं बच्चों के बारे में कितना और किस प्रकार का ज्ञान रखते हैं– अतीत एवं वर्तमान दोनों का ज्ञान। उपरोक्त सभी विद्वत्तापूर्ण अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र हैं, मगर इनमें से कोई भी हमारे शैक्षणिक संस्थानों में विशेष तौर पर अच्छी तरह से विकसित नहीं हैं। इसलिए जब हम बचपन विषय पर चर्चा करें, तो हमें स्वीकार करना होगा कि हमारे उद्देश्य की सीमाएँ उपलब्ध ज्ञान से तय होंगी। इन सीमाओं का एक महत्त्वपूर्ण आयाम उन परिस्थितियों की विविधता से जुड़ा है, जिसमें हमारे देश में बचपन विकसित होता है।

विविधता एक भ्रामक शब्द है। यह भूगोल और संस्कृति से उपजने वाले आकर्षक अन्तरों को उजागर करता है जबकि आर्थिक परिस्थितियों और जातिगत ऊँच-नीच की व्यवस्था में निहित असमानता से उपजे अन्तरों को दबा देता है या अनदेखा कर देता है। जब इसे बचपन पर लागू किया जाता है तो विविधता संस्कृति द्वारा प्रेरित तीव्र लैंगिक भेदभाव को भी ढँकने का प्रयास करती है। यहाँ यह कहना पूरी तरह से असत्य नहीं होगा कि जहाँ तक भारत में गरीबी और महिलाओं की बात है, तो बचपन में कोई खास विविधता नहीं है। हमें बचपन के अध्ययन के लिए प्रासंगिक श्रेणियों के रूप में ग्रामीण एवं शहरी की भी पहचान करनी होगी। वास्तव में, इनकी प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है क्योंकि भारत में आधुनिकता, तेजी से बढ़ते हुए आर्थिक विकास के चरणों से गुजर रही है।

दरअसल, हमें नई श्रेणियों की पहचान करनी होगी जैसे मजबूरन विस्थापन के अन्तर्गत बचपन, ठीक वैसे जैसे संयुक्त राष्ट्र ने युद्ध और स्थानीय या आन्तरिक हिंसा से उपजी मुश्किल परिस्थितियों में बचपन श्रेणी को मान्यता दी है।

---

*यह लेख इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज में *Contested Sites: Construction of Childhood* पर हुए सेमिनार में दिए गए आधार व्याख्यान पर आधारित है।

यूरोप का बच्चा

भारत में बचपन विषय पर हमारा चिन्तन मुख्य रूप से इस विषय पर प्रभावशाली वैश्विक विमर्श द्वारा गढ़ा गया है। इसके सामान्य मान लिए जाने (normative) के अपने उपयोग हैं, परन्तु यह निश्चित मूलतत्व-आधारित (essentialised) एवं बाध्यकारी तुलनात्मक नजरिया हमारे चारों ओर के बचपन का अध्ययन करने के प्रयासों पर हावी हो जाता है। यह समस्या शिक्षा की उपनिवेशी व्यवस्था के अन्तर्गत हमारी जिज्ञासा को मिले प्रशिक्षण से जुड़ी है। इसमें हम या तो यूरोपीय अनुभवों को जस का तस लागू करने का रुख रखते हैं या उन पर विषम प्रतिक्रिया करने को आतुर रहते हैं। आधुनिक युग की मूल या मातृ-विचारधारा के रूप में उपनिवेशवाद अपनी अकादमिक सन्तान (academic progeny) को सीमित विकल्प ही देती है। इसके अलावा, यह विमर्श इससे भी आकार लेता है कि हमारे लक्षित पाठक कहाँ स्थित हैं। ज्ञान की किसी भी नई परियोजना को इन बाध्यताओं को मद्देनजर रखना चाहिए और यह बचपन जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर अधिक लागू होता है जिस पर बहुत कम शोध हुआ है।

अठारहवीं सदी के मध्य में बच्चा नामक अवधारणा ने, स्वतन्त्रता, व्यक्तिवादिता (individuality) और समानता के विमर्श के रूप में पश्चिमी यूरोप में जन्म लिया। शब्दों का यह समूह, शिक्षाशास्त्रीय आधुनिकतावाद के सिद्धान्त और बचपन को वयस्कता से बिल्कुल अलग स्थापित करने वाले व्यवहार के केन्द्र में हैं। यह प्रक्रिया 150 वर्षों से चली आ रही थी जब अन्य लोगों के साथ मॉन्टेसरी [Maria Montessory] और ज्यां पियाजे (Jean Piaget) ने बचपन की धारणा के एक ढाँचे को उकेरा। दोनों ने ही बालमन के विकास को जीव-विज्ञान में स्थापित किया।

लेकिन इससे पहले ही जीवन के अध्ययन में एक बड़ा बदलाव आ गया था। जीवन को पर्यावरण के साथ जोड़कर देखा जाने लगा था। बचपन विषय पर व्यवहारवादी अध्ययन वर्तमान में सरलीकृत और आलोचना-योग्य लग सकता है, परन्तु इसने पर्यावरण की भूमिका को उजागर करके वंशानुगत विरासत में मिली क्षमताओं के सिद्धान्तों पर एक प्रमुख जीत हासिल की। इसके समानान्तर, फ़्रायडियाई मनोविश्लेषण ने शुरुआती बचपन के अनुभवों की व्यक्तित्व निर्माणकारी प्रकृति को प्रस्तुत किया। फ़्रायड [Sigmund Freud] द्वारा प्रस्तुत की गई कुछ निर्धारणात्मक*[1](deterministic) व्याख्याओं ने ऐसी सामाजिक और राजनीतिक

*[1] ऐसे सिद्धान्त जो किसी एक कारक को निर्धारक मानते हैं और अन्य प्रभावों को नजरन्दाज कर देते हैं। (सं)

प्रक्रियाओं को प्रेरित किया है जो बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य को सर्वोच्च वरीयता देने पर जोर देती हैं।

विभिन्न अकादमिक क्षेत्रों में हुई अध्ययन की उपलब्धियों ने फ्रायड के निर्धारणात्मक सिद्धान्त पर सवाल उठाए हैं, जिसकी वजह से प्रारम्भिक बचपन की देखभाल के तरीकों की श्रृंखला में प्रगति हुई है। पश्चिम में, 20वीं सदी के प्रारम्भिक दौर में, विभिन्न प्रकार के लोकतान्त्रिक संघर्षों से प्रभावित एक गतिशील राजनीतिक माहौल में सीखने की विभिन्न सैद्धान्तिक परम्पराओं के बीच बहस आगे बढ़ी। अपने स्वयं के राजनीतिक विकास के दौरान, यूरोप ने रूसो के वफादार नागरिक की अवधारणा पर उठाए गए सवालों के विभिन्न जवाब पाए। रूसो की निष्ठा उस बच्चे में केन्द्रित थी जिसे प्रकृति ने आजादी से नवाजा है। इस तरह के बच्चे को कैसे शिक्षित किया जाए? यह मूल सवाल, शैक्षिक प्रगति के इतिहास में बाल-केन्द्रित शिक्षण प्रणाली एवं नागरिकता के लिए शिक्षा के मध्य विरोधाभास का आधार बना हुआ है।

हमारे औपनिवेशिक सन्दर्भ

अकसर हम इन मामलों को पहचानने और इनका महत्त्व स्वीकार करने में असफल होते हैं। न ही हम इन बातों के निहितार्थ को अपने औपनिवेशिक सन्दर्भ से जोड़कर व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। और ऐसा इसलिए नहीं कि हमारे पास मार्गदर्शन की कमी है। हमारे पास इन विषयों पर गाँधी और टैगोर के स्तर के प्रतिभाशाली शिक्षक रहे हैं। इस विरासत को आगे बढ़ाते हुए, देवी प्रसाद ने बच्चे की आवाज को 'संकट में संस्कृति' के तौर पर सुना। यह उन बच्चों की चीख है जिनके शरीर से जीवन को निचोड़ा जा रहा है और जो खुद को व्यक्त करने के लिए तरस रहे हैं। हम भारत के औपनिवेशीकृत नागरिक इन शिक्षकों को ध्यान से सुनने की बजाय राष्ट्र विकास में बहुत व्यस्त रहे। हमें समुचित कल्पनाशीलता के साथ अपने राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करने की जरूरत है। अगर हम ऐसा करने के लिए तैयार हों तो हम एक परिवर्तनकारी क्षण को अनुभव करेंगे जब बच्चा स्वतन्त्र राष्ट्रीयता के समुचित विचार के केन्द्र में था।

यह सांकेतिक घटना 1930 के दशक में घटी जब गाँधी ने अपने आपको एक चमत्कारी नेता के तौर पर स्थापित कर लिया था और साधारण नमक को एक सामूहिक जुनून में तब्दील कर दिया था। प्रेमचन्द द्वारा रचित एक लघु कहानी, *ईदगाह* इस क्षण को कैद करती है। इसका नायक एक गरीब मुस्लिम बच्चा है जिसने अपने अमीर पड़ोसी पर अपनी पसन्द के

चिमटे से धौंस जमाई। उसने रंगीन मिट्टी के खिलौनों को तुच्छ करार दिया जो कि गाँव के मेले से घर आते-आते ही टूट जाते हैं। हामिद अपनी इस खरीदारी के लिए कई भूमिकाओं की कल्पना करते हुए इसे एक शानदार या सुपर खिलौने के रूप में प्रस्तुत करके इठलाता है। परन्तु उसकी दादी उस वक्त भाव-विभोर हो जाती है, जब हामिद उससे कहता है कि वह चिमटा उसके लिए लाया है। हामिद की चतुर एवं सहज कल्पना, उसकी शाब्दिक और नैतिक लड़ाई का हुनर गाँधी की शैली में गूँजता है जिसने भारतीय मानस को खादी और नमक जैसे असाधारण प्रतीकों की कल्पना से हिलाकर रख दिया। इन प्रतीकों ने एक बिखरती हुई व्यवस्था को अर्थ देकर एक सभ्यता को पुनर्जीवित कर दिया जिसकी आत्मा खो चुकी थी।

यह कोई संयोग नहीं है कि लम्बे अन्तराल के बाद 1930 के दशक में हिन्दी और कई भाषाओं में बाल साहित्य ने एक लम्बे वसन्त काल में प्रवेश किया। इसके बाद के दो दशकों में छोटे बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के उच्च कोटि के साहित्य का प्रकाशन हुआ। इसमें बचपन के साथ रचनात्मक रूप से जुड़ने का उल्लेखनीय प्रयास दिखाई देता है। इस लहर में कई प्रकार के तत्व शामिल थे। बच्चों की परवरिश और शिक्षा पर कई प्रयोग और बहस वातावरण में थे। गाँधी द्वारा की गई स्कूली शिक्षा की आलोचना और शिक्षाशास्त्रीय आधुनिकता के सम्बन्ध में उनके क्रान्तिकारी प्रस्ताव को इस व्यापक सन्दर्भ के साथ देखा जाना चाहिए। गाँधी और टैगोर ने अपने साहसिक प्रयासों से, विशेष शैक्षणिक नजरिए और सरोकार के साथ बचपन का निर्माण किया। मार्जरी साइक्स [Marjorie Sykes] ने अपने व्यक्तिगत और विवेचनापूर्ण प्रयासों से उनके विचारों के बीच सेतु बाँधने की रूपरेखा बनाई। यह उन सभी के लिए एक दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण स्रोत है, जो बचपन विषय के विमर्श के इतिहास में रुचि रखते हैं।

संरक्षण का विचार

यूरोपीय इतिहास और विचार के परिणामस्वरूप एक लम्बे और संरक्षित बचपन का विचार उभरा। हम संरक्षण के इस विचार को दो पहलुओं में अलग करके देख सकते हैं। पहला, काम या रोजगार से बच्चों की शारीरिक सुरक्षा, और दूसरा, यौनिकता पर प्रचलित सामाजिक व्यवहार तथा अच्छे और बुरे यौनिक ज्ञान से बच्चों की सुरक्षा। प्रथम प्रकार के संरक्षण के परिणामस्वरूप बच्चों को अनिवार्य रूप से देखभाल किए जाने का अधिकार मिला। इस देखभाल में केवल परिवार की ही नहीं बल्कि राज्य द्वारा संचालित संस्थानों की भी भूमिका बनी। दूसरे प्रकार का संरक्षण बच्चे की यौनिक अनभिज्ञता या अज्ञानता पर जोर देता था और बच्चे के विकास के उस मनोवैज्ञानिक चरण से मेल खाता है (और इस चरण की अवधि

को वह बढ़ाता भी है) जिसे सुप्तावस्था (latency*[2]) कहते हैं। यूरोपीय बाल साहित्य की कई उत्कृष्ट रचनाएँ इन विचारों से प्रेरित हैं जिसमें बच्चों को एक लम्बी सुप्तावस्था में मासूम रोमांच का आनन्द लेते हुए दर्शाया गया है।

औपनिवेशीकरण से गुजरे हमारे जैसे राष्ट्रों के लिए बचपन का उपरोक्त पहला पहलू एक मुश्किल दुविधा है। कृषि और शिल्प, दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं में परिवार के व्यावसायिक जीवन में बच्चे की भागीदारी होना ग्रामीण जीवन की एक सच्चाई है। परिवार की आमदनी में बच्चे की भूमिका को रोकने वाले आधुनिक विचार के साथ, इस सच्चाई का आसानी से सामंजस्य नहीं बिठाया जा सकता है। आधुनिक राज्य, बाल श्रम के सभी रूपों पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास करता है ताकि हर बच्चा स्कूल में नागरिकता की शिक्षा पाए। परन्तु बाल श्रम कायम है और यह शहरों में देह व्यापार और घरेलू गुलामी जैसे नए रूप ले रहा है। दूसरी तरफ अनिवार्य शिक्षा अपना अर्थ और औचित्य पाने के लिए संघर्ष कर रही है। सिर्फ बच्चे को ही नहीं, राज्य बच्चे के शिक्षक तक को गरिमा प्रदान करने में विफल रहा है।

बचपन विषय पर दूसरा आधुनिक मानदण्ड मासूमियत के विचार को आगे करता है। इसका आशय है कि सुप्तावस्था में यौनिकता से दूर रहना और किशोरावस्था में यौनिक व्यवहार से दूर रहना। यूरोप में आधुनिकता का आशय बच्चों को यौनिक कल्पना से मुक्त रखना और उन्हें बतौर यौनिक प्राणी विकसित होने के लिए सजगता के साथ अपनी रफ्तार तय करने की आजादी देना है। बचपन विषय पर यूरोपीय आदर्श के इस दूसरे पहलू के कारण सुप्तावस्था को बच्चे के बौद्धिक विकास में महत्त्वपूर्ण अवधि के रूप में पहचाना गया। बच्चों को यौन शोषण से मुक्ति दिलाना श्रम से मुक्ति दिलाने से कहीं अधिक दुर्गम रहा है।

बचपन विषय पर यूरोपीय विचार और अनुभव से उपजे विश्वव्यापी विमर्श ने हमें सजग किया कि जिस विषय पर हम काम कर रहे हैं उसके न केवल कई आयाम हैं बल्कि कई परतें भी हैं। भारत दुनिया के कई ऐसे समाजों में से एक है, जहाँ मुश्किल से तीन पीढ़ी पहले बाल विवाह एक आदर्श था और अभी भी व्यापक रूप से प्रचलन में है। ऐसे में हमें उस संघर्ष को पहचानने की आवश्यकता है जिसका सामना राज्य और कानून को संस्कृति की शक्ति के साथ तालमेल बिठाने के दौरान करना पड़ता है। कानून एक ऐसे समाज में समता को अमल में लाने का प्रयास करता है जहाँ कोई समानता ही नहीं है। इसलिए यह किशोर-

---

*[2] बच्चों की यौनिकता के विकास को फ्रायड ने कई चरणों में बाँटा था जिसमें सुप्तावस्था (latency) एक अवस्था है जो लगभग 8 साल से 13 साल (यौवनारम्भ) तक मानी गई जिसमें बच्चा यौनिकता के प्रति उदासीन होता है। (सं.)

अपराध जैसे विषयों का सामना करने में असमर्थ रहता है जिसकी लड़कियाँ सबसे ज्यादा शिकार होती हैं।

सामाजिक लिंग निर्माण और बचपन

सामाजिक लिंग निर्माण का अध्ययन हमें ऐसे छोर पर ले जाता है जिसके बारे में हमें गलतफहमी है कि हम इसे बखूबी समझते हैं। महिलावादी आन्दोलन और शोधकार्य ने व्यापक तौर पर उजागर किया है कि बचपन विषय पर हमारा सामान्य ज्ञान कितना अधूरा और असन्तुलित है। साथ ही साथ इसने बहुत से लोगों को यह भरोसा भी दिलाया है कि शिक्षा जल्द ही जेन्डर असन्तुलन को दूर कर देगी। लड़कियों के बचपन का अध्ययन करने के मेरे खुद के प्रयास ने मुझे यह पहचानने के लिए प्रेरित किया कि जेन्डर सन्तुलन को लेकर हमारी आशावादी सोच कितनी निराधार है। मेरी हाल की किताब 'चूड़ी बाजार में लड़की' में मैंने लड़कियों के बचपन का एक मनोवैज्ञानिक-सांकेतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह उन कठिनाइयों पर प्रकाश डालता है जिनका सामना हम तब करते हैं जब हम लड़कियों को एक सामान्य बचपन की छवि में शामिल करने का प्रयास करते हैं जबकि बचपन की कल्पना ही लड़कपन की छवि और विचारों पर आधारित है।

बाल विकास के क्षेत्र में मौजूद ज्ञान से यह पता चलता है कि बच्चे के ज्ञान की सीमा इत्यादि का दायरा उसकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमता के साथ 5 से 11 साल की उम्र के दौरान विकसित होता है, जो कि प्राथमिक शाला में रहने का समय होता है। लड़कियों के मामले में यही वह समय होता है जब उनकी घर से बाहर आने-जाने की गतिविधियों में कमी आ जाती है, उनके शारीरिक रूप से परिपक्व होने से बहुत पहले से ही और शारीरिक परिपक्वता के साथ तो वे और कठोर नियमों में बँध जाती हैं। परिवारों के अन्दर लड़कियों के समाजीकरण के महत्त्वपूर्ण पहलुओं में उनकी शरीर केन्द्रित चेतना पर जोर देना और सक्रिय तौर पर उनके बौद्धिक पहलुओं को नकारना शामिल है। लड़कियों के पालन-पोषण के दौरान रीति-रिवाज इस कदर हावी होते हैं जो लड़कों के बचपन में नहीं होता है। यह स्कूली शिक्षा के उद्देश्यों के साथ शुरू से ही टकराव पैदा करता है।

यह कल्पना करना कि एक लड़की जब अपनी स्कूल की वर्दी में स्कूल के फाटक में प्रवेश करती है तो वह एक अन्य लड़की को पीछे छोड़कर आती है जो रीति-रिवाजों के अनुसार दैनिक जीवन के सभी पहलुओं को जीना सीख रही होती है, हमारे विश्लेषण को दिशा देने के लिए जरूरी है। बाल-विवाह के आँकड़े कम हो तो गए, परन्तु अभी भी लड़की के मन में

विवाह एवं मातृत्व को सर्वोपरि लक्ष्य के रूप में स्थापित करना हर रोज की बात है। यह और सामाजिक लिंग निर्माण के इस तरह के अन्य पहलू हैं जो यह कहने को मजबूर करते हैं कि बचपन की संरचना की हमारी सामान्य धारणा लड़कीपन के साथ तालमेल नहीं बिठा पाती है।

बचपन की जाति

भारत में बचपन का अध्ययन करने के लिए जाति एक और ढाँचा प्रस्तुत करती है जिसको भविष्य में बचपन का अध्ययन करने के लिए पूरी तरह से शामिल करना चाहिए। एक सामाजिक संस्था के रूप में जाति की ताकत और लचीलेपन की पहचान करना और बचपन के दौरान काम करने वाली एक शक्तिशाली समाजीकरण की एजेंसी के तौर पर इसका अध्ययन करना अभी बाकी है। सामाजिक लिंग निर्माण पर लीला दुबे का विश्लेषण जाति विशेष के रीति-रिवाजों की भूमिका की ओर इशारा करता है जो लड़की के बचपन के शुरुआती और बाद के हिस्सों में अहम भूमिका निभाते हैं। लड़कों द्वारा जाति की संस्कृति को आत्मसात करने के विषय में कुछ ज्ञान आत्मकथात्मक साहित्य में उपलब्ध है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे दलित लेखकों द्वारा रचित आत्मकथाएँ इस व्यापक क्षेत्र में ज्ञान का मूल्यवान स्रोत हैं जिसमें भेदभावपूर्ण व्यवहार को वैध ठहराने वाली जाति व्यवस्था का स्कूल या तो सामना करने की कोशिश करता है या उससे बच निकलता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब हम यह मान लेते हैं कि एक शिक्षित व्यक्ति जाति के प्रति कम सचेत होगा, तब हम शिक्षा की भूमिका को, बतौर आधुनिकीकरण की एक एजेंसी के रूप में अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से देख रहे होते हैं। ऐसा ही शहरीकरण की भूमिका के बारे में कहा जा सकता है। अगर बचपन के दौरान जाति की भूमिका को समाजीकरण की एक महत्त्वपूर्ण एजेन्सी के रूप में पूरी तरह समझना हो तो हमें इन दोनों मान्यताओं पर सवाल उठाने की आवश्यकता है। भारत में आने वाले वर्षों में बचपन को एक सामाजिक अवधारणा के रूप में विकसित करने के लिए इस तरह की संवेदना आवश्यक है।

सकारात्मक उम्मीद

इससे पहले कि बचपन एक सामाजिक अवधारणा के रूप में आकार ले और विकसित हो पाए, राजनीतिक स्वीकार्यता के साथ एक नई अनजान दुनिया हमारी कल्पना से आगे निकल गई है। यह सूचना और प्रसार प्रौद्योगिकी की दुनिया है। इसने उन सीमाओं पर आघात

पहुँचाया है, जिनके भीतर यूरोप ने बचपन को बचाने की कोशिश की थी। इस प्रसंग का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने की आवश्यकता है क्योंकि यह बहुत नया है और अतिगतिशील पूँजी वाली राजनीतिक अर्थव्यवस्था में कसकर गुँथा हुआ है। इन्सानों का एक-दूसरे से संवाद किस तरह से होता है, इस पर इसका असर महसूस किया जा रहा है परन्तु हम इसकी प्रकृति और प्रभाव को पूरी तरह से नहीं जानते हैं। यह प्रभाव बच्चों एवं वयस्कों के रिश्तों को क्या आकार दे रहा है, यह भी ऐसा ही एक धुँधला या अस्पष्ट क्षेत्र है।

नए तकनीकी परिवेश ने राष्ट्र राज्यों, क्षेत्रों, संस्कृतियों के बीच और उम्र के बीच की सीमाओं को धुँधला या कमजोर कर दिया है। बच्चों तक पहुँच अब सीधी हो गई है और उपभोक्ता नागरिकों के भूमण्डलीय समुदाय में उन्हें सीधे ही शामिल किया जा सकता है। बचपन के सभी पहलुओं को, जिसमें खेल भी शामिल है, इस भूमण्डलीय समुदाय ने अपने में सम्मिलित कर लिया है। इस नए समुदाय को भूमण्डलीय गठजोड़ संगठनों द्वारा संचालित किया जाता है, जो कि बच्चों के लिए विडियो गेम, खिलौने और सोशल मीडिया की वेबसाइट भी डिजाइन करते हैं। अब बच्चे के समाजीकरण के लिए उसके आस-पास रहने वाले बड़े-बुजुर्ग ही एकमात्र या प्राथमिक जिम्मेदार घटक या प्रतिनिधि नहीं हैं।

अब माता-पिता न ही बच्चे के संरक्षक होने की भूमिका निभा सकते हैं और न ही वे बच्चे के ज्ञान के लिए कोई रूपरेखा या आकार तय कर सकते हैं। माता-पिता की तरह शिक्षक के पास भी इस नई व्यवस्था में बोलने के लिए ज्यादा कुछ नहीं है। तकनीकी-रोमांटिक (techno-romantic) नजरिए से देखें तो, यह बच्चों पर वयस्क के नियन्त्रण और देखभाल से मुक्ति का क्षण है। अब बच्चे नागरिक बनाए जाने के लिए उपलब्ध नहीं हैं। इससे पहले कि वे राष्ट्र की कानूनी नागरिकता हासिल करें राज्य उन्हें भूमण्डलीय बाजार की सक्रिय सदस्यता के लिए समर्थ बनाने का इरादा रखता है। लड़कियों का मामला फिर से यहाँ कुछ अलग है। भूमण्डलीय बाजार में लड़कियाँ खास हैं क्योंकि (खुद) उनकी वस्तुओं की तरह उपभोग होने की सम्भावना इस बात से जुड़ी है कि वे बाजार की वस्तुओं का उपभोग कैसे करती हैं।

बच्चे के सम्पर्क के दायरे का यह नया भूगोल, संरक्षण और मार्गदर्शन की पुरानी धारणाओं को अर्थहीन करार देता है। बच्चा अपार संसार में बिना किसी सुरक्षा के दोबारा लौट आया है। बच्चे की शारीरिक सुख-सुविधा, बौद्धिक और भावनात्मक विकास की जरूरतों के लिए इसका आशय क्या है, इस पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। इस चिन्तन के लिए अभी तक उपलब्ध सिद्धान्तों के संग्रह का मार्गदर्शन कम ही है।